Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्थानकवासी

जैनमुनि उपाध्याय श्रीआत्मारामजी

For Private and Personal Use Only

॥ कोबातीर्थमंडन श्री महावीरस्वामिने नमः ॥

॥ अनंतलब्धिनिधान श्री गौतमस्वामिने नमः ॥

॥ गणधर भगवंत श्री सुधर्मास्वामिने नमः ॥

॥ योगनिष्ठ आचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

॥ चारित्रचूडामणि आचार्य श्रीमद् कैलाससागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर

(जैन व प्राच्यविद्या शोधसंस्थान एवं ग्रंथालय)

पुनितप्रेरणा व आशीर्वाद

राष्ट्रसंत श्रुतोद्धारक आचार्यदेव श्रीमत् पद्मसागरसूरीश्वरजी म. सा.

जैन मुद्रित ग्रंथ स्केनिंग प्रकल्प

ग्रंथांक : १३६२

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-३८२००७ (गुजरात)
(079) 23276252, 23276204
फेक्स : 23276249
Websiet : www.kobatirth.org
Email : Kendra@kobatirth.org

शहर शाखा

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
शहर शाखा
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
त्रण बंगला, टोलकनगर
हॉटल हेरीटेज़ की गली में
पालडी, अहमदाबाद – ३८०००७
(079) 26582355

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ॐ

स्थानकवासी

लेखक

जैनधर्म-दिवाकर, जैनागम-रत्नाकर, साहित्यरत्न,
जैन-मुनि
१००८ उपाध्याय श्रीआत्मारामजी महाराज पंजाबी

प्रकाशक

लाला वलायती राम कस्तूरी लाल जैन
पेपर मर्चेंटस्, लुधियाना.

प्रथमावृत्ति १०००] १९४२ [मूल्य सदुपयोग

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समय जैनमत[3] प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार समय-समय पर अन्य गुण निष्पन्न नाम भी आगमों के आधार पर प्रचलित होते रहे हैं।

प्रस्तुत छोटी सी पुस्तक में इसी दृष्टि से विचार विमर्श किया है कि स्थानकवासी शब्द आगमों में किस अर्थ में व्यवहृत हुआ है और यह शब्द कितने महत्त्व का है? आत्मविकाश के लिए इस शब्द की कितनी आवश्यकता है? इतना ही नहीं, इस पुस्तक के अध्ययन करने से प्रत्येक मुमुक्षु को निश्चित हो जायगा कि—भाव स्थानकवासी[4] बनने से ही उत्तम स्थानक की प्राप्ति हो सकती है। शाखा और प्रतिशाखाओं से ही वृक्ष का सौन्दर्य द्विगुणित हो उठता है। ठीक इसी प्रकार जैनधर्मरूपी वृक्ष भी अनेक शाखाओं और प्रतिशाखाओं से युक्त होने पर ही सौन्दर्य प्राप्त करता है। ध्यान रहे कि शाखा प्रतिशाखा में परस्पर असूया, निन्दा, द्वेष, कलह, ईर्ष्या और वैमनस्य आदि न हों। अनेकान्तवाद किंवा स्याद्वाद तथा उत्सर्ग अपवाद आदि के समन्वयविधायक दृष्टिकोणों को लक्ष्य में रखकर प्रत्येक शाखा और प्रतिशाखा में परस्पर प्रेम, मैत्री भावना, पारस्परिक गुणानुवाद, सहानुभूति, धर्मप्रचार आदि क्रियाएँ हों, तभी जैनमत के सिद्धान्तों का जनता में भलीभाँति प्रचार हो सकता है। इस पुस्तक में निष्पक्ष दृष्टि तथा स्याद्वाद के आश्रित होकर स्थानकवासी शब्द का विचार किया गया है। आशा है, पाठकजन द्रव्य स्थानकवासी के साथ-साथ भाव स्थानकवासी बनने की चेष्टा करेंगे ताकि वे निर्वाण-प्राप्ति के अधिकारी हों।

अलं विद्वत्सु

जैनमुनि उपाध्याय आत्माराम

---

३ जिणमयनिउणे अभिगमकुसले—दशवै० ६, ३, १५

४ लोगुत्तमुत्तमं ठाणं सिद्धिं गच्छसि नीरओ।

—उत्तराध्ययन ६, ५८

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

स्थानकवासी

श्वेताम्बर जैन परम्परा में मूर्तिपूजा को आगम विहित न माननेवाला जो सम्प्रदाय है, वह स्थानकवासी नाम से प्रसिद्ध है। इस सम्प्रदाय का स्थानकवासी नाम कब और क्यों पड़ा, इसके विषय में ऐतिहासिक तथ्य चाहे कुछ भी हो, परन्तु शास्त्रीय दृष्टि से इसका विचार करते हुए जो तथ्य प्रतीत हुआ है, उसका दिग्दर्शन कराने के लिये हमारा यह उद्योग है। आशा है, पाठकगण शान्तिपूर्वक इसका अवलोकन करेंगे।

शास्त्रीय दृष्टि से विचार करते हुए प्रतीत होता है कि स्थानकवासी शब्द द्रव्य और भाव दोनों ही अर्थों को लेकर प्रयुक्त हुआ है। इस शब्द का प्रयोग पहले एकमात्र परम त्यागी जैन साधुओं में ही होता था और बाद में यह तदनुयायी वर्ग में भी प्रयुक्त होने लगा। जैसे जैन परम्परा में श्वेताम्बर और दिगम्बर इन दोनों

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दों का सम्बन्ध एकमात्र साधु वर्ग से ही था और बाद में वह दोनों सम्प्रदायों में रूढ़ हो गया, इसी प्रकार संयम-रूप स्थान में निवास करनेवाले साधु वर्ग में प्रयुक्त होने-वाला स्थानकवासी शब्द, बाद में उसके अनुयायी वर्ग में प्रयुक्त होने से सारे सम्प्रदाय का ही इस नाम से उल्लेख होने लगा।

स्थानकवासी इस समस्त पद में स्थानक और वासी ये दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं। स्थानक और स्थान ये दोनों एक ही अर्थ के वाचक हैं। स्थान शब्द का अर्थ है ठहरने को जगह और वासीका अर्थ है उसमें निवास करने-वाला। 'स्थीयते अस्मिन्निति स्थानं, स्थानं एवेति स्थानकं, स्थानके वसतीति स्थानकवासी' ❀ अर्थात् शास्त्रविहित द्रव्य और भाव रूप स्थान में निवास करनेवाला स्थानक-वासी कहा व माना जाता है।

कोशादि में स्थान शब्द के अनेक अर्थ देखने में आते हैं। उनमें द्रव्य और भाव रूप दोनों स्थानों का ग्रहण

❀ स्था धातु से "करणाधारे चानट् [४।४।९ शा० व्या०] इस सूत्र से अनट् प्रत्यय होकर स्थान शब्द सिद्ध होता है यथा स्थीयते अस्मिन्निति स्थानम्, फिर स्वार्थ में क प्रत्यय होकर स्थानक बना तथा वास शब्द से शीलेज्जातेः इस सूत्र द्वारा णित् प्रत्यय होकर वासी शब्द बना, वसति तच्छील इति वासी।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किया गया है ❀ और प्रस्तुत प्रकरण में दोनों अर्थ अभिप्रेत हैं। इसलिये यहाँ पर क्रमशः दोनों का ही विचार किया जाता है।

द्रव्य स्थानक

यद्यपि स्थान-स्थानक शब्द का प्रसिद्ध अर्थ अमुक प्रकारका क्षेत्र, भूमि या निवास करने की जगह

❀ जैनागम-शब्दसंग्रह नाम के अर्द्धमागधी-गुजराती कोश में 'स्थान' शब्द के निम्नलिखित १९ अर्थ दिये हैं:—

ठाण-स्थान, पुं. न. (१) स्थान, ठेकाणुं, जगा, मकान, (२) काउसग्ग—कायाने जरापण हलाववी नहीं ते (३) लेश्या के अध्यवसायोंनूं स्थान (४) कार्य (५) स्थिति करवी ते अधर्मास्तिकायानूं लक्षण (६) आंकड़ानूं स्थान (७) उत्पत्ति स्थान—उपजवानूं ठेकाणुं (८) अवकाश-भूमिप्रदेश (९) शरीर ने अमुकस्थितिमां राखवुं ते आसन (१०) पण्णवणाना बीजापदनुं नाम (११) त्रीजुं अंगसूत्र के जेमां एक थी दस प्रकार की वस्तुओंनूं वर्णन छे (१२) स्थितिपरिणाम (१३) स्थिति-रूपगुण (१४) योग—मन-वचन-कायाना व्यापारना स्थानक (१५) ऊभा रहेवुं ते (१६) निवास देवुं ते (१७) कारण-निमित्त (१८) प्रकार भेद (१९) ठाणांगसूत्रना ठाणानुं नाम।

१९ अर्थों में से प्रस्तुत निबन्ध में द्रव्यरूप में स्थान, क्षेत्र, भूमि तथा भावरूप में स्थितिपरिणाम और स्थितिरूपगुण, इन अर्थों का ही ग्रहण अभीष्ट है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हो है और यह अर्थ ठीक भी है, परन्तु यहाँ पर स्थानक शब्द का अर्थ कुछ विशेषता को लिये हुए है, उसी का दिग्दर्शन यहाँ पर कराया जाता है।

जैनागमों में पंचमहाव्रतधारी संयमशील मुनियों के निवासस्थान का उपाश्रय के नाम से उल्लेख किया गया है अर्थात् ध्यान के लिये जैन मुनि को शास्त्र में जिन-जिन स्थानों में रहने की आज्ञा दी है, वे स्थान उपाश्रय के नाम से कहे गये हैं। उसी उपाश्रय या बसती को 'स्थानक' नाम से कहने की परम्परा चली आती है, अथवा ऐसे कहें कि उपाश्रय और स्थानक ये दोनों शब्द पर्याय-वाची अर्थात् एक ही अर्थ के वाचक हैं। तात्पर्य यह कि मूर्तिपूजा को आगमविहित मानने और न मानने वाली इन दो परम्पराओं में क्रमशः उपाश्रय और स्थानक शब्द का व्यवहार होने लगा। इन दोनों शब्दों में अर्थगत कोई भेद नहीं, परन्तु सम्प्रदाय भेद से एक ही अर्थ के वाचक दो शब्द ग्रहण किये गये, जिनमें किसी प्रकार का भी अनौचित्य प्रतीत नहीं होता। एक सम्प्रदाय में उपाश्रय शब्द प्रसिद्ध रहा जब कि दूसरी सम्प्रदाय ने उसीके अनुरूप भाव को अधिकता देते हुए उससे कुछ अधिक गुणनिष्पन्न स्थानक शब्द को ग्रहण किया। ये दोनों ही युक्तिसंगत और शास्त्रानुमोदित नाम हैं। इसमें विवाद

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

को कोई स्थान नहीं। पाठकों को यह तो भली भाँति विदित है कि शास्त्रों में साधु को अनगार कहा है। उसका अपना कोई घर नहीं होता, न वह अपने लिये कोई घर बनाता है और न उसके निमित्त से बने हुए किसी मकान में ठहरने की उसको शास्त्र में आज्ञा है। इसलिये श्रमण (साधु) और श्रमणोपासक (गृहस्थ) के लिये धर्म-ध्यानार्थ व्यवहार में आनेवाले उपाश्रय या स्थानक कैसे और किस प्रकार के होने चाहियें, इस बातका उल्लेख जैनागमों में बड़े स्पष्ट शब्दों में किया गया है। आचारांग नाम के प्रथम अंग का शय्या अध्ययन प्रायः इसी विषय के वर्णन से भरा पड़ा है और प्रश्नव्याकरणसूत्र के आठवें अध्ययन का निम्नलिखित सूत्रपाठ उक्त विषय का इस प्रकार खुलासा करता है—

* "पढमं देवकुल-सभा-प्पवा-वसह-रुक्खमूल-आराम-कंदरागर-गिरिगुहा-कम्मउज्जाण - जाणसाला-कुवितसाला-

---

* प्रथमां वस्तुविविक्तवासोनाम्नीं भावनामाह—देवकुलं यक्षादिगृहं, सभा महाजनस्थानं, प्रपा पानीयशाला, आवसथं परिव्राजकस्थानं, वृक्षमूलं प्रतीतं, माधवीलतादियुक्तदंपतीरमणाश्रयो वनविशेषः आरामः, कंदरा दरी, आकरो लोहाद्युत्पत्तिस्थानं, गिरिगुफा प्रतीता, कर्म—लोहादि परिकर्म्यते क्रियते तत् परिकर्म, उद्यानं पुष्पादिमद्वृक्षसंकुलं उत्सवादौ बहुजनभोग्यम्, यानशाला

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मंडव-सुन्नघर-सुसाणलेणआवणे अन्नम्मि य एवमादियंमि दग-मट्टिय-बीज-हरित-तसपाणअसंसत्ते अहाकड़े फासुए विवित्ते पसत्थे उवस्सए होइ विहरियव्वं, आहाकम्मबहुले य जे से आसित-संमज्जिअ-ओवलित्तसोहिय-छायण-दूमण-लिंपण-अणुलिंपण-जलण-भंडचालण अंतो बहिं च असंजमो जत्थ वड्ढति संजयाण अट्ठा वज्जेयव्वो हु उवस्सओ से तारिसए सुत्तपडिकुट्ठे । एवं विवित्तवासवसहिसमिति-जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा निच्चं अहिकरणकरण-करावणपावकम्मविरतो दत्तमणुन्नाय ओग्गहरुती ।

रथादीनां रक्षणगृहं, कुप्यशाला गृहोपकरणशाला, मंडपः यज्ञाद्युत्सवे (निर्मितवस्त्रगृहविशेषः), शून्यगृहं निर्मानुषं, श्मशानं मृतकजनप्रेतभूमिः, लयनं शैलगृहं, आपणः पण्यस्थानं, ततः समाहार द्वन्द्वः, अन्यस्मिन्नपि एवं प्रकारे उपाश्रये विहर्त्तव्यमिति । किंभूते उपाश्रये ? दकमुदकं, मृत्तिका पृथिवीकायरूपा, बीजानि शाल्यादीनि, हरितानि दूर्वादीनि, त्रसाः प्राणाः (प्राणिनः) द्वीन्द्रियादयः, तैः असंसक्तोऽनायुक्तः (तस्मिन्निति), यथाकृते—गृहस्थेन स्वार्थं निष्पादिते, प्रासुके निर्जीवे, विविक्ते स्त्र्यादिदोषरहिते, अतएव प्रशस्ते शुभनिमित्ते उपाश्रये वसतौ भवति विहर्त्तव्यं आश्रयितव्यं शयनादि वा विधेयम्। यस्मिन् स्थाने न वसितव्यं तदाह—आधया साधुमनस्याधाय आश्रित्य तया पृथिव्याद्यारंभः क्रियते तदाधाकर्म तेन बहुलं—बहु प्रचुरं यत्र स तथा एवंविधोपाश्रयो वर्ज्यः, अनेन मूलगुणदूषितस्य परिहार उक्तः । पुनः कीदृशम् ? आ—ईषत् सितं

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस आगमपाठ का भावार्थ यह है कि देवकुल—यक्षादि का स्थान, सभा, प्रपा (प्याऊ) परिव्राजक-स्थान (मठ-आश्रम), वृक्षमूल, आराम, गुफा, आकर—जहांपर लोहादि की क्रियाएँ की जाती हैं, उद्यान, यानशाला कुप्यशाला, मंडप, श्मशान—मशाणभूमि, शून्यगृह—सूना मकान, शैलगृह—पर्वत के अन्दर बना हुआ मकान, आपण—दुकान तथा इसी प्रकार के अन्य स्थान जिनमें कि मिट्टी, पानी, बीज, हरा तृण, घास आदि सचित्त पदार्थ न हों एवं त्रसप्राणी—स्त्री, पशु और नपुंसक आदि से रहित शुद्ध

सिंचितं, संमार्जितं कचवरापनयेन, उपलिप्तं उत्कषितं जलाभिसिंचनेन, शोभितं चन्दनमालाचतुष्कपूर्णादिना, छादनं उपरि दर्भादिना छादनं, दुमनं सेढिकया धवलनं, लिंपनं छगणादिना, सकृल्लिप्ताया भूमेः पुनर्लेपनं अनुलेपनम्, शीतापनोदाय वन्हेर्ज्वलनं, भांडपालनं प्रकाशहेतोर्भाजनानामितस्ततः करणं, समाहार द्वन्द्वः, अन्तर्मध्ये बहिश्चोपाश्रयस्य तत्र असंयमो जीवविराधना यस्मिन् उपाश्रये वर्तते, संयतानां साधूनां अर्थाय हेतवे तादृशः सावद्योपाश्रयो वसतिः वर्जनोय इत्यर्थः । हु निश्चयेन स तादृशः सूत्रप्रतिक्रुष्टः आगमनिषिद्धः। एवं उक्तप्रकारे विविक्ते एकान्ते वासः—स्थानं वसतिर्यस्य स समितियोगयुक्तो भावितो वासितः अन्तरात्मा जीवः, निच्चं सदा, अधिकरणकारापणानुमतिपापकर्मविरतो निवृत्तः सन् दत्तं स्वाम्यादिभिः अनुज्ञातः सूत्रोक्तस्तादृशो योऽवग्रहो ग्रहणाय वस्तु तत्र रुचिर्यस्यासौ साधु इति टीकाकारः ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बसती हो और जो साधु के निमित्त न तो बनाई गई हो और न साधु के निमित्त से उसमें किसी प्रकार की आरम्भ-सारम्भ आदि क्रियायें की गई हों; ऐसे एकान्त शुद्ध स्थानों को उपाश्रय, वसती या स्थानक कहते हैं। आत्मसमाधि के लिए ऐसे ही शुद्ध निर्दोष और विविक्त स्थानों में जैन मुनियों को निवास करना चाहिये, कारण कि इस प्रकार के स्थानों में रहने से ही संयम का यथावत् पालन और आत्मसमाधि की प्राप्ति हो सकती है।

इन्हीं स्थानों को, जहाँ पर कि संयम निर्वाह के लिये जैन मुनि समय-समय पर आकर ठहरते हैं, श्रमणोपाश्रय भी कहते हैं; और उनके पास जानेवाले गृहस्थों को श्रमणोपासक के नाम से भी उल्लेख किया है। श्रीभगवती सूत्र में कहा है कि श्रमणोपाश्रय में यदि किसी श्रमणोपासक (जैन गृहस्थ) ने सामायिक की हो और उसकी किसी वस्तु का वहाँ पर अपहरण हुआ हो तो वह सामायिक के पश्चात् उक्त वस्तु को वहाँ पर ढूँढता है, वह वस्तु उसी गृहस्थ की होती है अन्य किसी की नहीं, क्योंकि सामायिक में उस गृहस्थ का ममत्व का त्याग नहीं है। ❀ "समणोवासगस्सणं भंते सामाइयकडस्स

❀ सामाइयकड़स्सत्ति कृतसामायिकस्य प्रतिपन्नाद्यशिक्षाव्रतस्य, श्रमणोपाश्रये श्रावकः सामायिकं प्रायः प्रतिपद्यते इत्यत

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समणोवस्सए अच्छमाणस्स केइ भंडे अवहरेज्जा इत्यादि" शत. ८ उद्दे. ५.

वर्तमान समय में जो लोग प्रायः यह कहते हैं कि चलो दर्शन करने व व्याख्यान सुनने के लिये साधुओं के उपाश्रय या स्थानक में—यह उनका कथन आगमनिर्दिष्ट प्रथा के प्रतिकूल नहीं किन्तु न्याय-संगत और आगमानुमोदित है। तब इस सारे कथन का सारांश यह निकला कि जो स्थान साधुओं के निवास का मुख्य उद्देश रख कर न बनाया गया हो तथा जो पूर्वोक्त दोषों से रहित हो एवं जिसमें रहने से धर्मध्यान की वृद्धि और कामरागादि की निवृत्ति में सहायता मिले और समय-समय पर आकर संयम-शीलवाले परम त्यागी जैनमुनि जहाँ निवास करें, उस स्थान का नाम उपाश्रय वसती या स्थानक है। इस प्रकार यह आगमदृष्टि से द्रव्य स्थानक कहा जाता है और उसमें निवास करनेवाले साधु द्रव्यरूप से स्थानकवासी कहलाते हैं "स्थानके-द्रव्यरूपे निर्दोषे विविक्ते प्रशस्ते उपाश्रये वसतौ, वसति तच्छील इति स्थानकवासी ॥

उक्तं श्रमणोपाश्रये आसीनस्येति, केइत्ति कश्चित्पुरुषः, भंडंति वस्त्रादिकं वस्तु गृहवर्ति साधूपाश्रयवर्ति वा, अवहरेज्जत्तिअपहरेत् इत्यादि (व्याख्या)।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भाव स्थानक

ऊपर के कथन में द्रव्यस्थानक का वर्णन किया गया है अर्थात् ❀आगमसम्मत निर्दोष और विशुद्ध स्थान में निवास करनेवाला ही आत्मसमाधि को उपलब्ध कर सकता है, क्योंकि आत्मशुद्धि के लिये भावशुद्धि के साथ-साथ द्रव्यशुद्धि को भी बड़ी आवश्यकता होती है। प्रायः द्रव्यशुद्धि भावशुद्धि में बड़ी सहायक होती है, इसी लिये स्थान स्थान पर शास्त्रकारों ने साधुओं के लिये एकान्त और शान्तिप्रद स्थान में, जहाँ किसी प्रकार से संयम को बाधा न पहुँचे, रहने और कामरागविवर्द्धक स्थान को त्यागने की आज्ञा दी है। परन्तु केवल द्रव्यशुद्धि से

❀ आगम में लिङ्गादि का भी द्रव्य और भाव रूप से उल्लेख किया गया है जैसे कि—

पुलाएणं भंते ! किं सलिंगे होज्जा अण्णलिंगे होज्जा गिहिलिंगे होज्जा ? गोयमा ! दव्वलिंगं पडुच्च सलिंगे वा होज्जा अण्णलिंगे वा होज्जा गिहिलिंगे वा होज्जा, भावलिंगं पडुच्च नियमा सलिंगे होज्जा एवं जाव सिणाए ॥ ९ ॥

लिङ्गद्वारे लिङ्गं द्विधा द्रव्यभावभेदात्, तत्र च भावलिङ्गं ज्ञानादि, एतच्च स्वलिङ्गमेव, ज्ञानादिभावस्यार्हतामेव भावात्, द्रव्यलिंगं तु द्वेधा स्वलिङ्गपरलिङ्गभेदात्, तत्र स्वलिङ्गं रजोहरणादि, परलिङ्गं च द्विधा कुतीर्थिकलिङ्गं गृहस्थलिङ्गं चेति।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ही आत्मसमाधि और संयम की निर्मलता नहीं हो सकती; इसलिये मोक्षाभिलाषी मुनि को द्रव्यरूप स्थान से आगे भावरूप स्थान को अपनी निवासभूमि बनाने की आवश्यकता होती है।

आत्मा की स्वाभाविक गुण-परिणति, उसका भाव-स्थान है; अथवा ऐसे कहें कि आत्मा के औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक इन पाँच भावों में से क्षायिक भाव ही मुख्य भाव स्थान है, क्योंकि यह भाव कर्मसम्बन्ध के सर्वथा क्षय होने से ही प्राप्त होता है। इस भाव स्थान को प्राप्त करने के लिये भावसंयम को ग्रहण करना होगा और भावसंयम के लिये सामायिकादि चारित्रों के विशुद्धतर संयमस्थानों में निवास करना अर्थात् उनका यथावत् पालन करना परम आवश्यक है। इसलिये परमसाध्य मोक्ष स्थान की प्राप्ति के निमित्त भावसंयम की आराधना करनेवाला जैनमुनि, सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्ध, सूक्ष्म-सम्पराय और यथाख्यात इन पाँच प्रकार के चारित्रभेदों के वर्णन किये गये ❀ संयम स्थानों में से विशुद्ध और

❀ श्रीभगवतीसूत्र में सामायिकादि चारित्रों के संयमस्थानों का वर्णन इस प्रकार से किया है—

"सामाइयसंजयस्सणं भंते! केवइया संजमट्ठाणा पण्णत्ता,

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विशुद्धतर संयम स्थानों में निवास करता है अर्थात् उनका सम्यक्तया आराधन करता है। अतः उक्त भावरूप संयम स्थानों में वास करने से वह भाव स्थानकवासी कहा वा माना जाता है। तब "स्थानके भावसंयमादिरूपे सम्यक्चारित्रे वसति तच्छील इति स्थानकवासी", इस गुणनिष्पन्न यौगिक व्युत्पत्ति के द्वारा उक्त भावकी स्पष्टता और प्रामाणिकता सुनिश्चित हो जाती है। इस प्रकार

गोयमा! असंखेज्जा संजमट्ठाणा पण्णत्ता एवं जाव परिहारविसुद्धियस्स। सुहुमसंपरायसंजयस्स पुच्छा, गोयमा! असंखेज्जा अंतोमुहुत्तिया संजमट्ठाणा पण्णता। अहक्खायसंजयस्स पुच्छा, गोयमा! एगे अजहण्णमणुक्कोसए संजमट्ठाणे। एएसिणं भंते! सामाइय-छेदोवट्ठावणिय-परिहारविसुद्धिय-सुहुमसंपरायअहक्खायसंजयाणं संजमट्ठाणाणं कयरे २ जाव विसेसाहिया वा? गोयमा! सव्वत्थोवे अहक्खायसंजमस्स एगे अजहण्णमणुक्कोसए संजमट्ठाणे, सुहुमसंपरायसंजयस्स अंतोमुहुत्तिया संजमट्ठाणा असखेज्जगुणा, परिहारविसुद्धिसंजयस्स संजमट्ठाणा असंखेज्ज गुणा, सामाइयसंजयस्स छेदोवट्ठावणियसंजयस्सय एएसिणं संजमट्ठाणा दोण्हवि तुल्ला असंखेज्ज गुणा। (शत. २५ उद्दे. ७)

व्या०—संयमस्थानद्वारे—सुहुमसंपरायेत्यादौ असंखेज्जा अंतोमुहुत्तिया संजमट्ठाणत्ति—अन्तर्मुहूर्त्ते भवानि आन्तर्मुहूर्तिकानि, अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणा हि तदद्धा, तस्याः च प्रतिसमयं चरणविशुद्धि-

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऊपर बताये गये द्रव्य और भावरूप स्थानों—स्थानकों में वास करने से जैन भिक्षु स्थानकवासी कहलाते हैं; जो कि किसी प्रकार से भी अनुचित नहीं है। यहां पर यह शंका हो सकती है कि जिस प्रकार व्याकरण के अनुसार स्थान शब्द से स्वार्थ में क प्रत्यय होने से स्थान

विशेषभावादसंख्येयानि तानि भवंति, यथाख्याते त्वेकमेव, तदद्धायाश्चरणविशुद्धेर्निर्विशेषत्वादिति, संयमस्थानाल्पबहुत्व चिन्तायां तु किलासद्भावस्थापनया समस्तानि संयमस्थानान्येकविंशतिः, तत्रैकमुपरितनं यथाख्यातस्य, ततोऽधस्तानि चत्वारि सूक्ष्मसम्परायस्य, तानि च तस्मादसंख्येयगुणानि दृश्यानि, तेभ्योऽधश्चत्वारि परिहृत्यान्यान्यष्टौ परिहारकस्य, तानि च पूर्वेभ्योऽसंख्येयगुणानि दृश्यानि, ततः परिहृतानि यानि चत्वार्यष्टौ च पूर्वोक्तानि तेभ्योऽन्यानि च चत्वारीत्येवं तानि षोड़श सामायिकछेदोपस्थापनीयसंयतयोः, पूर्वेभ्यश्चैतान्यसंख्यातगुणानीति।

इसका संक्षेप से भाव यह है कि सामायिक-संयत के असंख्यात संयमस्थान कहे हैं, इसी प्रकार छेदोपस्थानीय और परिहारविशुद्धि-संयत के भी असंख्यात संयमस्थान जानने, किन्तु सूक्ष्मसंपराय-संयत के आन्तर्मुहूर्तिक असंख्यात संयम स्थान हैं, और अत्यन्त विशुद्ध होने से यथाख्यात चारित्र का एक ही संयमस्थान माना गया है। फिर मूल सूत्र में इन संयम स्थानो का जो अल्पबहुत्व कथन किया गया है, उसको वृत्तिकार ने स्फुट कर दिया है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और स्थानक ये दोनों एक ही अर्थ के वाचक माने जाते हैं, उसी प्रकार मूल जैनागमों में भी कहीं पर स्थान शब्द की जगह स्थानक शब्द का उल्लेख है या नहीं ? इसके उत्तर में इतना ही कहा जा सकता है कि समवायांग सूत्र में द्वादशाङ्गी का वर्णन करते हुए समवायांगसूत्र के अधिकार में एक सूत्रपाठ दिया गया है उसमें ❀ "ठाणगसयस्स"–[स्थानकशतस्य] ऐसा उल्लेख है। यहाँ पर स्थान शब्द के अर्थ में स्थानक शब्द का विधान स्पष्ट देखने में आता है। इसलिये आगम भी स्थान और स्थानक शब्द की अभिन्नता का ही समर्थक है।

वास्तव में सर्वोत्कृष्ट और सर्वातिशायी जो स्थान है,

❀ सूत्रपाठ इस प्रकार है—

समवाएणं एवाइयाणं एगट्ठाणं एगुत्तरीय परिवुड्ढीय दुवालसंगस्स गणिपिडगस्स पल्लवग्गो समणुगाहिज्जइ ठाणगसयस्स बारसविह वित्थरस्स सुयणाणस्स जगजीवहियस्स भगवओ समासे णं समोयारे अहिज्जति ॥

इसके अतिरिक्त प्रमाणनयतत्वालोक के अष्टम परिच्छेद के १९ वें सूत्र के निम्नलिखित पाठ में भी स्थान शब्द के अर्थ में स्थानक शब्द का प्रयोग किया गया है—

वादिप्रतिवादिनोर्यथायोगं वादस्थानककथाविशेषांगीकारणाग्रवादोत्तरवादनिर्देशः" इत्यादि।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वह मोक्षस्थान है। वह ध्रुव है, शाश्वत है और सब प्रकार की बाधाओं से रहित है। उसको प्राप्त करने या उसमें निवास करनेवाले को जन्म, मरण, जरा और आधि व्याधि का कोई भय नहीं रहता।❀ वह लोक के अग्रभाग में स्थित है, परन्तु उसका प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। उसको प्राप्त करनेवाले आत्माओं के लिए फिर किसी प्रकार का कोई कर्त्तव्य बाकी नहीं रह जाता। वे संसार की जन्म-मरण परंपरा का अन्त करके सदा के लिये कृतकृत्य हो जाते हैं। इसी मोक्ष का दूसरा नाम सिद्धस्थान या सिद्धों को निवास भूमि भी है †। अतः उस मोक्षरूप स्थान में निवास करनेवाले सिद्ध भगवान् ही यथार्थरूप

❀ अत्थि एगं धुवं ठाणं लोगग्गम्मि दुरारुहं।
जत्थ नत्थि जरामच्चू, वाहिणो वेयणा तहा॥ ८१॥
छा० अस्त्येकं ध्रुवं स्थानं, लोकाग्रे दुरारोहम्।
यत्र न स्तो जरामृत्यू, व्याधयो वेदनास्तथा॥ ८१॥

† तं ठाणं सासयं वासं, लोगग्गम्मि दुरारुहं।
जं संपत्ता न सोयंति, भवोहंतकरा मुणी॥ ८४॥
छा०—तत् स्थानं शाश्वतावासं, लोकाग्रे दुरारोहं।
यत् संप्राप्ता न शोचन्ते, भवौघान्तकरा मुनयः!

ये गाथायें उत्तराध्ययनसूत्र के २३ वें अध्ययन की हैं। केशीकुमार और गौतममुनि के प्रश्नोत्तर रूपमें यह सम्पूर्ण अध्ययन कहा गया है, जो कि पाठकों के लिये अवश्य द्रष्टव्य है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में स्थानकवासी कहे व माने जा सकते हैं। उसके बाद सर्वोत्कृष्ट कैवल्यविभूति द्वारा परमपुनीत जीवन्मुक्त स्थान में निवास करनेवाले तीर्थंकर और अन्य केवली स्थानकवासी हैं। इसके अनन्तर उक्त स्थान (मोक्ष स्थान) को प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा रखनेवाले जैनमुनि, विशुद्धभाव से संयमरूप स्थान में वास करने से और भाव संयम के पोषक निर्दोष स्थानक उपाश्रय वसती आदि में निवास करने से स्थानकवासी कहे जाते हैं। इस प्रकार सिद्धों से लेकर वर्तमान जैनमुनियों तक सभी स्थानकवासी हैं। इसमें शंका को कोई स्थान नहीं।

प्रत्येक शब्द के अर्थनिर्देश में द्रव्य और भाव दोनों ही ग्रहण किये जाते हैं और ग्रहण करने भी चाहिये, अन्यथा शब्दार्थ अधूरा रह जाता है। इसलिये किसी शब्द का अर्थ करते समय द्रव्य और भाव इन दोनों को ही सम्मुख रखना चाहिये। जैसे कि ऊपर स्थानकवासी शब्द के अर्थ में बतलाया गया है। वैसे ही जैन परम्परा में उपलब्ध होनेवाले दिगम्बर और श्वेताम्बर शब्द भी द्रव्य और भाव इन दोनों को लेकर प्रवृत्त हुए हैं। द्रव्य से दिगम्बर वह है जिसके बदन पर कोई वस्त्र नहीं। और

कहिणं भंते ! सिद्धाणं ठाणा पण्णता ? कहिणं भंते ! सिद्धा-परिवसंति [पण्णवणा सू० दूसरा पद सिद्धाधिकार]

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भाव से दिगम्बर वह माना जाता है जो कि अन्दर से सर्वथा नग्न अर्थात् जिसकी आत्मा से कर्मरूप वस्त्र सर्वथा उतर चुके हों। ऐसी दशा में यदि कोई दिगम्बर सम्प्रदाय का अनुयायी यह कहे कि दिगम्बरत्व प्राप्त किये बिना मोक्ष नहीं होता, तो इसमें वह कुछ अनुचित नहीं कहता भावदृष्टि से उसका यह कथन ठीक है। इसी प्रकार द्रव्य से श्वेताम्बर वह है जिस मुनि के श्वेत वस्त्र हों, और भाव से श्वेताम्बर उसे कहते हैं जो अन्दर से सर्वथा श्वेत हो, अर्थात् जो परम शुक्ल परम निर्मल शुक्लध्यान रूप वस्त्रों से युक्त हो। ऐसी हालत में यदि हम यह कहें कि श्वेताम्बर हुए बिना मोक्ष का प्राप्त करना असम्भव है तो इसमें कुछ भी अनुचित नहीं। इसी तरह स्थानकवासो सम्प्रदाय का कोई अनुयायी यदि यह कहे कि यदि मोक्षप्राप्ति की इच्छा है, तो स्थानकवासी बनो। तो यह भी ठीक ही है, क्योंकि जब तक यह आत्मा भाव संयम रूप स्थान—स्थानक—में वास करता हुआ यथाख्यात चारित्र को प्राप्त करके क्षायिक भाव में नहीं पहुँचता तब तक मोक्ष का प्राप्त होना कठिन ही नहीं, किन्तु असम्भव है।

उपसंहार

इस सारे लेखका सारांश यह है कि जैन आगमों में जिस अर्थ में उपाश्रय शब्द का प्रयोग हुआ है, उसी अर्थ

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में स्थानक शब्द का ग्रहण है। जैसे कि पहले बतलाया जा चुका है कि श्वेताम्बर जैन परम्परा में दो सम्प्रदाय प्रचलित हैं, एक वह जो मूर्तिपूजा को आगमविहित नहीं मानता है, जब कि दूसरे सम्प्रदाय की मान्यता इसके विरुद्ध है। पहले में तो स्थानक और उपाश्रय दोनों प्रचलित रहे और दूसरे ने मात्र उपाश्रय शब्द को ही अपनाया। इसलिये स्थानक कहो या उपाश्रय, अर्थ दोनों का एक ही है। शब्दभेद का कारण केवल साम्प्रदायिक विचार विभिन्नता है, ऐसा हमारा विचार है। इसके अतिरिक्त इतना फिर भी स्मरण रहे कि स्थानकवासी शब्द पहले तो देवता, द्रव्य और भावरूप स्थानक में वसने से जैनमुनियों तक ही वह सीमित रहा; बाद में दिगम्बर और श्वेताम्बर शब्द की भान्ति वह तदनुयायी वर्ग में प्रयुक्त होता हुआ एक सम्प्रदाय में रूढ़ होगया जो कि आज तक प्रचलित हो रहा है।

अन्त में पाठकों से हमारा निवेदन है कि स्थानकवासी शब्द के सम्बन्ध में शास्त्रीय दृष्टि से हमारा जो कुछ विचार था वह हमने उनके सामने उपस्थित कर दिया, आशा है अन्य जैन विद्वान् भी इस विषय पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मिलने का पता—

लाला वलायती राम कस्तूरी लाल जैन

पेपर मर्चेंटस्, लुधियाना (पंजाब)

श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
कोबा (गांधीनगर) पि 382009

For Private and Personal Use Only